

[2024] 10 S.C.R. 708 : 2024 INSC 769

नीलम गुप्ता व अन्य

बनाम

राजेन्द्र कुमार गुप्ता व अन्य

(सिविल अपील सं. 3159-3160/ 2019)

14 अक्टूबर, 2024

[सी.टी. रविकुमार एवं संजय कुमार, न्यायाधीशगण]

विचारार्थ विवादक

यह मुद्दा उठा कि क्या आक्षेपित निर्णय को निर्विवाद या निर्विवादित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए यथावत रखा जाना है; क्या वाद अनुसूचित संपत्ति संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति है; क्या उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष कि वादी वाद अनुसूचित संपत्ति का स्वामी है, तथ्यों को आत्मसात करने और साक्ष्य की सराहना पर सही निष्कर्ष है; और क्या उच्च न्यायालय अपीलार्थियों के इस तर्क को स्वीकार करने से इनकार करने में सही था कि उन्होंने प्रतिकूल कब्जे से वाद भूमि पर हक (टाइटल) को पूर्ण किया।

शीर्ष टिप्पण

प्रतिकूल कब्जा - संपत्ति का अधिकार - उत्तरवादी सं.1 द्वारा संपत्ति के कब्जे की पुनः प्राप्ति हेतु वाद - अपीलार्थियों के विरुद्ध वादी - मूल प्रतिवादियों के विरुद्ध वादी ने दावा किया कि उसने 1968 में अपने एक समान चचेरे भाई और मूल प्रतिवादियों से पंजीकृत विक्रय विलेख के अनुसार वाद संपत्ति खरीदी थी और इसके पंजीकरण के बाद से वह 1983 में प्रतिवादियों द्वारा बेदखल किए जाने तक भूमिस्वामी अधिकारों के तहत वाद संपत्ति के शांतिपूर्ण कब्जे का आनंद ले रहा था-मूल प्रतिवादियों का प्रकरण कि उनके पिता और वादी के पिता ने 1963 में अपने भतीजे (सामान्य चचेरे भाई) के नाम पर वाद संपत्ति खरीदी थी; कि 1967 में वादी के पिता की मृत्यु के बाद, वाद संपत्ति को वादी के नाम पर स्थानांतरित कर दिया गया था, हालांकि दावा किया गया था। कि इसका

कब्जा अभी भी उनके पास बना हुआ है; कि 1976 में उनके पिता-मूल प्रतिवादी संख्या 1 और वादी के परिवार मध्य मौखिक विभाजन हुआ, जिसके तहत प्रतिवादी के परिवार के भाग को आवंटित वाद संपत्ति थी; कि संपत्ति संयुक्त हिंदू परिवार का हिस्सा थी; और प्रतिकूल कब्जे और परिसीमा का अनुरोध किया, इस आधार पर कि वाद अनुसूची संपत्ति पर 12 वर्ष से अधिक समय तक कब्जा था - विचारण न्यायालय ने वाद खारिज कर दिया, और प्रथम अपीली न्यायालय ने इसे यथावत रखा - यद्यपि, उच्च न्यायालय ने उत्तरवादी के पक्ष डिक्री प्रदान की - वादी - में हस्तक्षेप:

अभिनिर्धारित : आवश्यकता नहीं है- एक बार जब वादी वाद संपत्ति पर अपना अधिकार साबित कर देता है तो यह उसी प्रतिकूल कब्जे का विरोध करने वाले प्रतिवादी के लिए है कि उसने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से अधिकार को पूरा किया और 1963 के अधिनियम के अनुच्छेद 65 के संदर्भ में परिसीमा का प्रारंभिक बिंदु उस दिनांक से शुरू नहीं होगा जब वादी को स्वामित्व का अधिकार उत्पन्न होता है, परन्तु केवल उस दिनांक से शुरू होता है जब प्रतिवादी प्रतिकूल हो जाता है - प्रतिवादियों की भाग साक्षय से पता चलता है कि शत्रुतापूर्ण अधिकार को शत्रुतापूर्ण रंग के हक के तहत स्थापित करने के बजाय उन्होंने केवल अनुमेय अधिकार का संकेत देते हुए साक्षय दिया है और साथ ही साथ समय को स्थापित करने में विफल रहे हैं। जिसे वादी के हक के प्रतिकूल में परिवर्तित कर दिया गया था जो निर्धारित अवधि के लिए खुला और निरंतर है- आवश्यकताएँ प्रतिवादियों द्वारा स्थापित प्रतिकूल अधिकार का गठन करने के लिए सह-अस्तित्व में रहना - वाद भूमि पर वादी के स्वामित्व के अधिकार के प्रारंभ की दिनांक से परिसीमा की अवधि की गणना करना, यह देखने के बजाय कि क्या वे अभिवचन करने में सफल हुए थे और उस संबंध में निर्धारित अवधि के संबंध में प्रतिकूल अधिकार और संतुष्टि की शुरुआत की दिनांक स्थापित करने में, उच्च न्यायालय द्वारा उचित रूप से हस्तक्षेप अभिनिर्धारित किया जाता है गया था - उच्च न्यायालय ने उचित रूप से अभिनिर्धारित अभिनिर्धारित किया जाता है कि प्रतिवादियों के पास अनुसूचित भूमि पर

केवल अनुज्ञेय अधिकार था और यह उत्तरवादी के विरुद्ध प्रतिकूल अधिकार नहीं था-वाद संपत्ति एक संयुक्त हिंदू परिवार नहीं है संपत्ति -उच्च न्यायालय ने उचित रूप से अभिनिर्धारित किया कि वादी मुकदमे की संपत्ति का स्वामी है और वादी ने स्वामित्व हासिल कर लिया था विक्रय- विलेख के आधार पर संपत्ति पर अधिकार - बेनामी संव्यवहार के संबंध में अभिवाक् भी खारिज कर दी गई - इसके अलावा, अचल संपत्ति को अप्राप्तवय के पक्ष में हस्तांतरित किया जा सकता है या अप्राप्तवय अंतरणकर्ता हो सकता है, यद्यपि अचल संपत्ति का अंतरणकर्ता नहीं - इस प्रकार, चचेरे भाई की उस समय कोई विधिक अक्षमता या अयोग्यता नहीं थी- 1963 में विक्रय- विलेख के निष्पादन के समय वादी के साथ-साथ एक अंतरणकर्ता के रूप में उसके नाम पर वाद भूमि की क्रय -विक्रय विलेखों को शून्य करार देने या यह अभिनिर्धारित करने का कोई कारण नहीं है कि उनका स्वामित्व अंतरण का प्रभाव नहीं है- अवमानना का आरोप लगाया गया कि तत्काल अपील लंबित है और आदेश पारित होने के बाद - कब्जे के संबंध में यथास्थिति, प्रतिवादियों ने तीसरा पक्ष बनाया संपत्ति में अधिकार - चूंकि आक्षेपित निर्णय को यथावत रखा गया है और यह घोषणा कि उत्तरवादी सं. 1 कब्जा पुनः प्राप्त करने हेतु हकदार है - अंतिम हो चुका है तथा उन शर्तों के अनुसार याचिका की समाप्ति- परिसीमा अधिनियम, 1963 - धारा 65 -संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 - संविदा अधिनियम, 1882 [कण्डिका 25, 29-31, 34, 35, 37, 40, 43, 45, 47, 49, 50]

उद्धृत न्यायिक दृष्टांत

सरूप सिंह बनाम बंतो व अन्य [2005] सुप.4 एस.सी.आर. 253 : (2005) 8 एस. सी. सी. 330; श्रीमती ओम प्रभा जैन बनाम अबनाश चंद व अन्य [1968] 3 एस.सी.आर. 111 : ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 1083- का अवलंब लिया गया।

अरुलवेलु व अन्य बनाम लोक अभियोजक और ए. एन. आर. के माध्यम से राज्य [2009] 14 एस.सी.आर. 1081 : (2009) 10 एस.सी.सी. 206; महाप्रबंधक (पी), पंजाब एंड सिंध बैंक व अन्य बनाम दया सिंह [2010] 9 एस.सी.आर. 71 : (2010) 11

एस.सी.सी. 233; राम सरूप गुप्ता (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम बिशुन नारायण इंटर कॉलेज व अन्य [1987] 2 एस.सी.आर. 805 : (1987) 2 एस.सी.सी. 555; काशी नाथ (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम जगन्नाथ [2003] सप. 5 एस.सी.आर. 202 : (2003) 8 एस.सी.सी. 740; दामोदर नारायण सावले (डी) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम तेजराव बाजीराव म्हास्के [2023] 6 एस.सी.आर. 175 : 2023 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 566; आर. राजगोपाल रेड्डी (डी) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम पद्मिनी चंद्रशेखरन (डी) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से [1995] 1 एस.सी.आर. 715 : ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 238; एम. दुरई बनाम मुथु व अन्य [2007] 1 एस. सी. आर. 816 : (2007) 3 एस.सी.सी. 114; प्रसन्ना व अन्य बनाम मुडेगौड़ा (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से, 2023 एस. सी. सी. ऑनलाइन एस. सी. 511; वसंत बनाम राजलक्ष्मी [2024] 2 एस. सी. आर. 326 : 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 132; बृज नारायण शुक्ला (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम सुदेश कुमार उर्फ सुरेश कुमार (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से, व अन्य [2024] 1 एस.सी.आर. 60 : (2024) 2 एस.सी.सी. 590; रविंदर कौर ग्रेवाल व अन्य बनाम मंजीत कौर व अन्य [2019] 11 एस.सी.आर. 74 : (2019) 8 एस. सी. सी. 729; एम. सिद्दीक (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से (राम जन्मभूमि मंदिर प्रकरण) बनाम महंत सुरेश दास व अन्य [2019] 18 एस.सी.आर. 1 : (2020) 1 एस.सी.सी. 1; डी. आर. रत्ना मूर्ति बनाम रामप्पा [2010] 12 एस. सी. आर. 755 : (2011)- 1 एस.सी.सी. 158 - संदर्भित।

उद्धृत पुस्तकें और पत्रिकाएँ

स्ट्रौड्स जुडिशल डिक्शनरी ऑफ वर्ड्स एंड फ्रेज़ेस, चौथा संस्करण- देखा गया।

अधिनियमों की सूची

बेनामी संव्यवहार (निषेध) अधिनियम, 1988; परिसीमा अधिनियम, 1963; संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882; संविदा अधिनियम, 1872; वयस्कता अधिनियम, 1875; परिसीमा अधिनियम, 1908

मुख्य शब्दों की सूची

संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति; भूमि पर हक (टाइटल) पूर्ण किया गया ; प्रतिकूल कब्जा; कब्जे पुनः प्राप्त करने हेतु वाद; विक्रय विलेख; भूमिस्वामी अधिकार; परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 65; परिसीमा का प्रारंभिक बिंदु; स्वामित्व का अधिकार; कब्जे का आशय (एनिमस पॉसिडेन्डी); अनुज्ञेय कब्जा; निर्धारित अवधि; परिसीमा की अवधि; अचल संपत्ति; अप्राप्तवय के पक्ष में अंतरण; विधिक अक्षमता, अयोग्यता; अवमानना; कब्जे के संबंध में यथास्थिति; तीसरे पक्ष के अधिकार; अवमानना याचिका बंद; समवर्ती निष्कर्ष; पुष्टि के लिए आधार; अभिवाक्।

प्रकरण उद्धृत

सिविल अपील अधिकारिता : सिविल अपील सं. 3159-3160/2019

सिविल अपील संख्या 3159-3160/ 2020 में अवमानना याचिका (सिविल) सं. 517-518/2020

के साथ

द्वितीय अपील सं. 401/2003 में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर के 25.07.2014 दिनांकित निर्णय व आदेश से

पक्षकारों की ओर से उपस्थिति

एन. के. मोदी, वरिष्ठ अधिवक्ता, सुश्री प्रतिभा जैन, दिव्यकांत लाहोटी, सुश्री प्रवीण बिष्ट, सुश्री विंध्य मेहरा, कार्तिक लाहोटी, सुश्री गरिमा वर्मा, अधिवक्तागण, अपीलार्थियों की ओर से।

पुनीत जैन, सुश्री क्रिस्टी जैन, उमंग मेहता, अभिनव गुप्ता, योगित कामत, मानव अरोड़ा, सुश्री श्रुति सिंह, सुश्री आकृति शर्मा, हर्ष जैन, सुश्री प्रतिभा जैन, दिव्यकांत लाहोटी, सुमीर सोधी, सौमित गांगुली, अधिवक्तागण, उत्तरवादियों की ओर से।

उच्चतम न्यायालय का निर्णय /आदेश

निर्णय

सी. टी. रविकुमार, न्यायाधीश

1. व्यवहार वाद सं. 195A/95 के मूल प्रतिवादी के विधिक प्रतिनिधि अर्थात् यहाँ अपीलार्थी सं. 1 से 3 तथा मूल प्रतिवादी सं. 2 ने द्वितीय अपील सं. 401/2003 में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर द्वारा पारित 11.07.2014 दिनांकित निर्णय, जिसमें अधीनस्थ न्यायालयों के समवर्ती निर्णयों को पलटकर 25.07.2014 दिनांकित डिक्री पारित की गई थी, के विरुद्ध दायर की है।

2. आक्षेपित निर्णय व डिक्री के कारक तथ्य संक्षेप में निम्नानुसार हैं:-

“उत्तरवादी सं. 1, अर्थात् राजेंद्र कुमार गुप्ता ने मूल प्रतिवादियों अर्थात् अशोक कुमार गुप्ता और राकेश कुमार गुप्ता के विरुद्ध स्वत्व (हक/ टाइटल) के आधार पर अनुसूचित वाद संपत्ति के कब्जे की वसूली हेतु 24.12.1986 को व्यवहार वाद सं. 195A/95 (निश्चित रूप से, पुनः क्रमांकित) प्रस्तुत कर रु. 10, 500/- की तथा रु. 1000/- प्रति एकड़ की दर से आगामी क्षतिपूर्ति और वादव्यय का भी दावा किया है। यह दावा किया गया था कि उसने अनुसूचित वाद संपत्ति 2019 की सिविल अपील सं. 3159-60 53 का पृष्ठ 3 पर वाद अनुसूची संपत्ति खरीदी थी। यह दावा किया गया कि उसने ग्राम मोवा, तहसील व जिला रायपुर के खसरा सं. 867/1 स्थित 7.60 एकड़ भूमि की अनुसूचित वाद संपत्ति स्वर्गीय श्री सीताराम गुप्ता जो उसके तथा मूल प्रतिवादियों के भी चचेरे भाई थे, से 04.06.1968 दिनांकित पंजीकृत विक्रय विलेख के अनुसार क्रय किया था। इसके अतिरिक्त उसने दावा किया कि इसके पंजीयन के समय से लेकर 1983 के जुलाई माह में

मूल प्रतिवादियों द्वारा कब्जा विहीन किए जाने तक वह अनुसूचित वाद सम्पत्ति का भूस्वामी कब्जा के अन्तर्गत शान्तिपूर्ण उपभोग करता आ रहा था।”

3. मूल प्रतिवादियों ने यह दावा करते हुए 04.04.1990 को संयुक्त रूप से एक लिखित कथन प्रस्तुत किया कि उनके पिता, श्री रमेश चंद्र गुप्ता तथा वादी के पिता श्री कैलाश चंद्र गुप्ता ने अपने भतीजे स्वर्गीय श्री सीताराम गुप्ता के नाम पर 15.03.1963 को अनुसूचित वाद संपत्ति खरीदी थी। उन्होंने आगे दावा किया कि रमेश चंद्र गुप्ता और कैलाश चंद्र गुप्ता ने यह उसी गाँव के खसरा सं.924 में 5 एकड़ क्षेत्रफल की एक अन्य भूमि भी खरीदी थी। उनके द्वारा यह दावा भी किया गया कि उनके पिता ने अनुसूचित वाद सम्पत्ति में डेयरी के उद्देश्य से तीन कमरे बनवाने के अतिरिक्त बिजली का पंप लगवाया था और कुआं खुदवाया था। उन्होंने दावा किया, बल्कि स्वीकार किया कि 25.12.1967 को वादी के पिता की मृत्यु के बाद, अनुसूचित वाद संपत्ति को वर्ष 1968 में वादी के नाम पर स्थानांतरित कर दिया गया था तथा उसका नाम राजस्व अभिलेख में दर्ज किया गया था, हालांकि दावा किया गया था कि इसका कब्जा अभी भी उनके पास रहा। उन्होंने प्रतिवाद किया कि रमेश चंद्र गुप्ता और कैलाश चंद्र गुप्ता संयुक्त परिवार के सदस्य थे और उनका उत्तर प्रदेश राज्य के फिरोजाबाद में चूड़ियों का संयुक्त व्यवसाय था तथा वर्ष 1952 में उन्होंने 'लक्ष्मी बेंगल्स स्टोर' के नाम और शैली में एक दुकान खोलकर रायपुर में चूड़ियों का व्यवसाय शुरू किया। उनके अनुसार वर्ष 1973 में उनके पिता ने धमतरी में एक अन्य चूड़ियों की दुकान खोली थी तथा 31.03.1976 को उनके पिता अर्थात्, मूल प्रतिवादी सं. 1 और वादी के परिवार के मध्य एक मौखिक बंटवारा हुआ था जिसके तहत खसरा सं. 924 की 5 एकड़ भूमि और धमतरी की चूड़ियों की दुकान वादी और उसके परिवार को दी गई थी तथा अनुसूचित वाद संपत्ति और रायपुर की चूड़ियों की दुकान प्रतिवादी के परिवार के हिस्से आवंटित की गई थी। उन्होंने यह भी दावा किया कि उपरोक्त बंटवारा के 31.03.1976 को प्रभावी होने तक वादी संयुक्त हिंदू परिवार का सदस्य था। अपने संयुक्त लिखित बयान में उन्होंने अनुसूचित वाद संपत्ति पर

12 वर्ष से अधिक समय से काबिज होने के आधार पर विशेष आपत्तियों के रूप में प्रतिकूल कब्जे और परिसीमा का भी अभिवाक् किया।

4. विरोधी अभिवाक् के आधार पर, विचारण न्यायालय ने निम्नानुसार 11 विवाद्यक तैयार किए :-

“1. क्या वादी ने 04/06/1968 दिनांकित पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से वाद भूमि खरीदकर वाद भूमि का कब्जा प्राप्त किया था?

2. क्या वादी वाद भूमि का भूमिस्वामी है?

3. क्या प्रतिवादियों के पिता ने 1963 और 1967 में अपने भतीजे के नाम पर वाद भूमि खरीदी थी तथा तब से प्रतिवादियों के पास वाद की भूमि का कब्जा है?

4. क्या वादी की जानकारी में प्रतिवादियों ने वाद भूमि पर 12 वर्ष का निरंतर और निर्बाध कब्जा पूरा कर लिया है?

5. क्या प्रतिवादियों के पिता ने 04/06/1968 को दस्तावेजों पर वादी के नाम पर सीताराम की सभी भूमि अंतरित की थी, जिनमें वाद भूमि भी सम्मिलित है?

6. क्या वाद भूमि से रु. 1000 प्रति वर्ष की आय होती है?

7. क्या वादी का दावा परिसीमा द्वारा वर्जित है?

8. क्या वर्ष 1983 में प्रतिवादियों ने वाद भूमि पर जबरन कब्जा कर लिया था?

9. क्या वादी प्रतिवादियों से वाद भूमि का कब्जा प्राप्त करने का

हकदार है?

10. क्या वादी प्रतिवादियों से रु. 10, 500/- रुपये की क्षतिपूर्ति पाने का हकदार है?

11. अनुतोष एवं वाद व्यय?"

5. विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 2 और 8 से 10 का उत्तर नकारात्मक में दिया तथा विवाद्यक सं. 6 व 7 का उत्तर सकारात्मक में दिया। इसके अतिरिक्त, यह अभिनिर्धारित किया गया कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से पता चलता है कि वर्ष 1952 से पहले, प्रथम उत्तरवादी-वादी के पिता और मूल उत्तरवादी के पिता संयुक्त रूप से चूड़ियों का व्यवसाय कर रहे थे और 1952 में रायपुर में और उसके बाद 1973 में संयुक्त व्यवसाय के रूप में धमतरी में चूड़ियों की दुकानें खोली गई थीं। संयुक्त व्यवसाय से संयुक्त परिवार की प्रबल धारणा बनेगी। विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि उपरोक्त विक्रेता सीताराम, जो वादी और मूल प्रतिवादियों का चचेरा भाई था, को प्र.P1/C 04.06.1968 दिनांकित विक्रय विलेख में 22 वर्ष का दर्शाया गया था अतः उक्त अनुसूचित वाद संपत्ति के क्रय के समय, सीताराम की आयु केवल 17 वर्ष रही होगी। परिणामस्वरूप अभिनिर्धारित किया गया कि :-

“जब तक कि अन्यथा प्रमाणित नहीं होता है, आयु का यह साक्ष्य स्वयं धनार्जन करने की असक्षमता दर्शाता है तथा यह ठोस अवधारणा निर्मित करता है कि वाद भूमि का क्रय संयुक्त परिवार के आय से किया गया था। प्रतिवादियों ने यह कथन भी किया है कि वाद भूमि पर उनके पिता ने वर्ष 1964 में बिजली का पंप लगवाया था, कुआं खुदवाया था, बाड़ा, द्वार और तीन कमरों का निर्माण करवाया था। यह कथन खण्डित नहीं हुआ है और यह भी स्पष्ट करता है कि वाद भूमि संयुक्त पारिवारिक संपत्ति थी।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि वाद भूमि का क्रय संयुक्त परिवार द्वारा सीताराम के नाम पर किया गया था और वाद भूमि के क्रय के पश्चात् संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति थी जिसे प्रतिवादियों के पिता ने वर्ष 1963 में संयुक्त रूप से अपने भाइयों के साथ सीताराम के नाम पर खरीदा था।"

(बल दिया गया)

6. यह अभिनिर्धारित करने के बाद कि वाद भूमि संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति थी, विचारण न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या प्र.P1/C- 04.06.1968 दिनांकित विक्रय विलेख के तहत वाद भूमि के क्रय द्वारा वादी- प्रथम उत्तरवादी ने प्र-P1-C के आधार पर वाद भूमि में कोई कब्जा अर्जित किया था। उस संबंध में, विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि चूंकि अनुसूचित वाद संपत्ति वर्ष 1963 में संयुक्त परिवार की आय से सीताराम के नाम पर खरीदी गई थी अतः यह संयुक्त परिवार की संपत्ति बन गई और यह दर्शाने के लिए कोई साक्ष्य नहीं था कि सीताराम उस समय परिवार के मुखिया थे। परिणामस्वरूप विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि सीताराम को प्र.P1/C- 04.06.1968 दिनांकित विक्रय विलेख के तहत वाद भूमि विक्रय का कोई कब्जा नहीं था अतः प्र.P1/C का निष्पादन बिना किसी प्राधिकार या कब्जा के था और इसलिए यह अमान्य है। इसके अतिरिक्त, विचारण न्यायालय ने मूल प्रतिवादियों के इस तर्क को स्वीकार किया कि वाद को परिसीमा से वर्जित किया गया था क्योंकि वादी- प्रथम उत्तरवादी को अपने हित के प्रतिकूल अनुसूचित वाद संपत्ति में उत्तरवादी के कब्जे के बारे में ज्ञात था। इस तरह की टिप्पणियों और निष्कर्षों के आधार पर, विचारण न्यायालय ने वाद खारिज कर दिया।

7. वाद के खारिज होने से व्यथित, वादी-प्रथम उत्तरवादी ने सिविल अपील सं. 17A के निर्णय और डिक्री को तृतीय अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, रायपुर के समक्ष चुनौती दी।

8. प्रथम अपील न्यायालय ने 09.04.2003 दिनांकित निर्णय के अनुसार अपील को खारिज कर दिया और वाद को खारिज किए जाने की पुष्टि की। फिर भी, अभिलेख पर साक्ष्य के विश्लेषण पर, प्रथम अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष में हस्तक्षेप किया कि अनुसूचित वाद संपत्ति एक संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति थी और निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया :-

“विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए वाद को खारिज कर दिया था कि वाद भूमि संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति थी और आगे यह कि वाद समय द्वारा वर्जित था, परन्तु मैंने साक्ष्य के विश्लेषण के बाद यह अभिनिर्धारित किया है कि वाद भूमि कभी भी पक्षों की संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति नहीं थी, परन्तु यह भी अभिनिर्धारित किया है कि वादी का वाद समय से वर्जित है। इन परिस्थितियों में, वाद को खारिज करने हेतु विवाद्यक सं. 7 के विरुद्ध विचारण न्यायालय द्वारा अभिलेखित निष्कर्ष सही पाया जाता है। अतः विचारण न्यायालय द्वारा पारित 13/10/1999 दिनांकित निर्णय में हस्तक्षेप करने का कोई प्रकरण नहीं बनता है।”

(बल दिया गया)

9. यह प्रथम अपील न्यायालय के 09.04.2003 दिनांकित निर्णय और डिक्री से इस हद तक व्यथित महसूस कर रहा है कि यह उसके लिए प्रतिकूल है कि वादी- प्रथम उत्तरवादी ने द्वि.अ.सं. 401/2003 दायर किया जो आक्षेपित निर्णय में समाप्त हुआ। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, आक्षेपित निर्णय के अनुसार उच्च न्यायालय ने समवर्ती निर्णय और वाद को खारिज करने डिक्री को उलट दिया और उन्हें दरकिनार कर अपील को स्वीकार किया। आक्षेपित निर्णय के तहत अपील को स्वीकार करने के बाद वादी-प्रथम उत्तरवादी के वाद में निम्नलिखित शर्तों पर डिक्री की गई।

“(क) वादी उत्तरवादी सं. 1 और 2 से गांव मोवा, तहसील और जिला रायपुर में स्थित खसरा संख्या 867/1 स्थित 760 एकड़ क्षेत्रफल वाली वाद भूमि के कब्जे की वसूली का हकदार है; और यह निर्देश दिया जाता है कि उत्तरवादी अनुसूचित वाद भूमि का खाली और शांतिपूर्ण कब्जा वादी को सौंप देंगे।”

10. उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय के परिशीलन से पता चलता है कि उच्च न्यायालय ने वस्तुतः यह पाया कि अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा साक्ष्य का मूल्यांकन विकृत था और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के उचित मूल्यांकन पर यह महसूस किया गया कि वादी-प्रथम उत्तरवादी यहाँ वाद भूमि पर स्वत्व (हक/ टाइटल) स्थापित करने में सफल रहा था। आक्षेपित निर्णय की कण्डिका 10 और 11 अपीलार्थियों द्वारा विक्रय के विरुद्ध की गई चुनौती के संदर्भ में प्रासंगिक हैं और वे इस प्रकार हैं :-

“10. आयुक्त ने 29 मार्च, 1988 के अपने आदेश द्वारा प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत अपील को खारिज करते हुए उप-मंडल अधिकारी, रायपुर के आदेश की फिर से पुष्टि की और वाद भूमि में प्रतिवादियों के नाम में प्रत्यक्ष नामांतरण करने से इनकार कर दिया। इस प्रकार, दस्तावेज प्र.P-4 स्पष्ट रूप से प्रतिवादियों की ओर से की गई स्वीकृति को दर्शाता है कि वाद भूमि वादी के पास उसके भूमिस्वामी अधिकारों के अधीन है और उन्होंने लगातार दो वर्ष अर्थात् 1973 और 1974 तक वाद भूमि पर खेती की। इसके अतिरिक्त प्रतिवादियों ने दस्तावेज प्र.P-4 में स्पष्ट रूप से कथन किया है कि उन्होंने वाद भूमि पर केवल दो वर्ष से अधिक समय तक खेती की है। उक्त दस्तावेज की तिथि 27.01.1981 है; और प्रस्तुत व्यवहार वाद 24.12.1986 को दायर किया गया है।

11. 04.06.1986 दिनांकित विक्रय विलेख (प्र.P-1) जिसके द्वारा वादी ने 04.06.1986 पर वाद भूमि का क्रय किया है, स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि तत्कालीन स्वामी सीताराम अग्रवाल ने वादी के पक्ष में कब्जा प्रदान किया था। साथ ही, प्रतिवादियों की ओर से की गई स्वीकृति कि वाद भूमि केवल लगातार दो वर्ष अर्थात् 1973 और 1974 के लिए वादी के पास थी, वे अधियादार के रूप में वाद भूमि के अनुज्ञेय कब्जे में थे; अतः यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि विचारण विचारण के साथ-साथ प्रथम अपील विचारण ने यह अभिनिर्धारित करने में स्पष्ट अवैधता की है कि वादी वाद भूमि पर अपना कब्जा स्थापित करने में विफल रहा है। इसके विपरीत यह अभिनिर्धारित अभिनिर्धारित किया जाता है कि वादी ने संतोषजनक रूप से वाद भूमि पर अपना कब्जा स्थापित अभिनिर्धारित किया जाता है और वादी के कब्जा के संबंध में नीचे दिए गए दो न्यायालयों द्वारा अभिलेखित किए गए निष्कर्ष को अपास्त सकता है।"

11. इसमें अपीलकर्ता 1,2 और 3 जो मूल उत्तरवादी सं. 1 के विधिक प्रतिनिधि हैं तथा अपीलकर्ता सं. 4, जो मूल उत्तरवादी सं. 2 था का दावा यह है कि प्र.P1/C-04.06.1968 दिनांकित विक्रय विलेख के अनुसार किया गया कथित विक्रय केवल कागजी और नकली दस्तावेज था। उनके अनुसार, सीताराम, जो मूल प्रतिवादियों का तथा वादी का भी चचेरा भाई है, के पास अनुसूचित वाद भूमि को अंतरित करने का कोई कब्जा नहीं था क्योंकि स्वयं उसने वर्ष 1963 में पंजीकृत विक्रय विलेख के आधार पर अनुसूचित वाद भूमि पर कोई कब्जा अर्जित नहीं किया था। यह उनका तर्क है कि उक्त संपत्ति सीताराम के नाम पर मूल प्रतिवादियों के पिता ने अपने भाइयों के साथ संयुक्त परिवार के लिए (और इस प्रकार कुल मिलाकर) उनकी बेनामी के रूप में खरीदी थी और इसलिए, वह वाद अनुसूची संपत्ति का वास्तविक स्वामी नहीं था। इसके अतिरिक्त उनका तर्क है कि

उन्होंने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से अनुसूचित वाद संपत्ति पर कब्जा को पूरा कर लिया है क्योंकि वे वर्ष 1968 से अनुसूचित वाद संपत्ति निरंतर उनके कब्जे में हैं। इसके अतिरिक्त, यह तर्क दिया जाता है कि जैसा कि विचारण न्यायालय और प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा भी उचित रूप से अभिनिर्धारित किया है, वादी- प्रथम उत्तरवादी द्वारा प्रस्तुतवाद को परिसीमा द्वारा वर्जित अभिनिर्धारित किया गया था क्योंकि यह कथित विक्रय की तिथि से 12 वर्ष के भीतर प्रस्तुत कर नहीं किया गया था।

12. इसके विपरीत, प्रथम उत्तरवादी की ओर से उपस्थित विद्वान वकील का तर्क है कि उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों तथा डिक्री में हस्तक्षेप किया जाना पूरी तरह उचित था क्योंकि वे साक्ष्य के विकृत मूल्यांकन का परिणाम थे। इस तर्क को पुष्ट करने के लिए, उन्होंने बेनामी संव्यवहार (निषेध) अधिनियम, 1988 की धारा-4 तथा परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 65 और इसके तहत दिए गए निर्णयों जिन पर उच्च न्यायालय द्वारा भरोसा किया गया है, का अवलंब लिया है। यह तर्क है कि प्र-P-4 में, उत्तरवादी -प्रतिवादियों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि वे 1973 में एक वाद भूमि पर काबिज किए गए थे और 1974 तक अधियादार (पट्टेदार) के रूप में काबिज रहे और इसलिए, उनके कब्जे को केवल अनुज्ञेय कब्जा कहा जा सकता है और इसे कभी भी प्रतिकूल कब्जा नहीं कहा जा सकता है, सिवाय यह प्रमाणित करने के बाद कि उनका कब्जा संपत्ति के स्वत्व के प्रतिकूल है, जो कि वास्तविक स्वामी यानी वादी की जानकारी में 12 वर्ष या उससे अधिक की अवधि से है। आगे उनका तर्क है कि 2019 की अधियादार (पट्टेदार) के रूप में प्रतिवादियों के कब्जे को कल्पना कि किसी सीमा में प्रतिकूल नहीं कहा जा सकता है और यह केवल अनुज्ञेय कब्जा हो सकता था।

13. आक्षेपित निर्णय के सावधानीपूर्वक विश्लेषण से पता चलता है कि वाद को खारिज करने के समवर्ती निर्णय को उलटते हुए, उच्च न्यायालय ने साक्ष्य की सराहना के तरीके में विभिन्न विकृतियों को पाया। उच्च न्यायालय ने पाया कि प्रतिवादियों ने कभी भी 04.06.1968 दिनांकित विक्रय विलेख, प्र.P-1C को चुनौती नहीं दी थी। परिणामस्वरूप

यह पाया गया कि विक्रय विलेख तथा प्र-P-2 और P-3 के अनुसार 1968 में वादी को कब्जा अंतरित कर किया गया था और वर्ष 1971-1972 से 1977 और 1978 की अवधि के खसरा प्रविष्टियों से अनुसूचित वाद संपत्ति पर वादी के स्वामित्व और कब्जे का खुलासा होता है। आगे यह पाया गया कि यद्यपि प्रतिवादियों ने दावा किया था कि वर्ष 1976 में वादी के परिवार और प्रतिवादियों मध्य संपत्तियों का मौखिक बंटवारा हुआ था, जिसके तहत प्रतिवादियों ने रायपुर में अनुसूचित वाद संपत्ति और दुकान प्राप्त की और वादी ने धमतरी में दुकान और खसरा संख्या 924 में भूमि प्राप्त की। प्रथम अपील न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उक्त मौखिक बंटवारे को प्रतिवादियों/अपीलार्थियों द्वारा यहां प्रमाणित नहीं अभिनिर्धारित किया गया था और प्रथम अपील न्यायालय का उक्त निष्कर्ष अंतिम हो गया था। उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया था कि इससे पहले प्रतिवादियों ने तहसीलदार, रायपुर के समक्ष दिनांक 27.01.1981 (इन कार्यवाहियों में अनुलग्नक पी-13 के रूप में प्रस्तुत) प्र-P-4 आवेदन प्रस्तुत किया था जिसमें कहा गया था कि वे दो वर्ष अर्थात् 1973 और 1974 के लिए वाद भूमि पर अधियादार (पट्टेदार) के रूप में खेती कर रहे थे या कर रहे थे और इस तरह अधिभोग किरायेदारों के कब्जा प्राप्त कर लिए थे और उनके नाम राजस्व अभिलेखित में दर्ज किए जाने चाहिए। यह पाया गया कि उक्त आवेदन में उन्होंने फिर से अनुसूचित वाद संपत्ति पर वादी के स्वामित्व को स्वीकार किया था। आवेदन प्र-P-4 को तहसीलदार द्वारा 22.06.1985 दिनांकित आदेश के अनुसार खारिज कर दिया गया था और इसे उप-मण्डल अधिकारी द्वारा तथा बाद में आयुक्त द्वारा क्रमशः 29.10.1986 और 29.03.1988 के आदेशों के अनुसार यथावत गया था। उच्च न्यायालय ने यह भी पाया कि तहसीलदार, रायपुर के समक्ष प्रस्तुत कर प्र-P-4 आवेदन की सामग्री को उत्तरवादी संख्या 1 द्वारा स्वीकार किया गया था, जबकि अंततः इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए प्रतिपरीक्षण किया जा रहा था कि इस तरह के अनुज्ञेयकब्जे को 12 वर्ष या उससे अधिक की निरंतर अवधि के लिए वादी के कब्जा के प्रतिकूल उनके कब्जे को प्रमाणित करने के अतिरिक्त प्रतिकूल कब्जे के रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। जाहिर है, उच्च न्यायालय ने पाया

कि तहसीलदार के समक्ष अधिभोग किरायेदारी का दावा करने के लिए उठाई गई दलीलें और दीवानी न्यायालय के समक्ष प्रतिकूल कब्जे वाली दलीलें प्रकृति में विरोधाभासी हैं। उच्च न्यायालय ने **इंदिरा बनाम अरुमुगम व अन्य**¹ के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा कर यह अभिनिर्धारित किया कि जब वाद स्वामित्व के आधार पर कब्जा के लिए है और जब एक बार स्वत्व (टाइटल/ हक) स्थापित किया जाता है, जब तक उत्तरवादी विहित अवधि के लिए प्रतिकूल कब्जा प्रमाणित नहीं कर सकता, तब तक इस तरह के वाद में अभिलेख पर लाए गए सुसंगत दस्तावेजों व अन्य साक्ष्यों के आधार पर वादी के वाद को खारिज नहीं किया जा सकता था। **सरूप सिंह बनाम बंतो व अन्य**² के प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 65 के आलोक में, परिसीमा का प्रारंभिक बिंदु उस दिनांक से शुरू नहीं होगा जब वादी को स्वामित्व का कब्जा प्राप्त होगा, परन्तु उस दिनांक से शुरू होगा जब उत्तरवादी का कब्जा प्रतिकूल हो जाएगा। इसके अतिरिक्त, यह अभिनिर्धारित किया गया कि जब वाद की स्थापना की दिनांक से बारह वर्ष के भीतर अनुसूचित वाद संपत्ति पर वादी का स्वत्व और कब्जा प्रमाणित हो जाता है, तो प्रतिवादियों को प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वामित्व प्रमाणित करना होगा और उस संबंध में, परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 65 के संदर्भ में परिसीमा का प्रारंभिक बिंदु उत्तरवादी के कब्जे के प्रतिकूल होने की दिनांक से शुरू होगा और उस दिनांक से नहीं जब वादी द्वारा स्वामित्व का कब्जा प्राप्त किया जाता है। यह कहने के लिए पर्याप्त है कि विचारण न्यायालय और प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा वाद को इस आधार पर अपास्त ने का समवर्ती निर्णय कि वाद को परिसीमा द्वारा वर्जित किया गया था, उच्च न्यायालय द्वारा ऐसे कारण बताते हुए आक्षेपित निर्णय के तहत अपास्त किया गया था।

14. अभिलेख पर साक्ष्य और कुछ अच्छी तरह से स्थापित स्थिति के आधार पर निर्विवाद तथ्यों को चुनौती देने/बनाए रखने के लिए हमारे सामने उठाए गए प्रतिद्वंद्वी

1 AIR 1999 SC 1549

2 (2005) 8 SCC 330

तर्कों पर विचार करते समय प्रकरण में शामिल तथ्यात्मक मैट्रिक्स पर शामिल कानूनों को ध्यान में रखने की आवश्यकता है। विचारण न्यायालय ने वाद को मुख्य रूप से दो मामलों में खारिज कर दिया, प्रथम, यह मानते हुए कि वाद अनुसूचित संपत्ति एक संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति है और अतः सामान्य चचेरे भाई सीताराम के पास संपत्ति को 04.06.1968 दिनांकित प्र.P1/C के अनुसार वादी (यहाँ प्रथम उत्तरवादी) को संपत्ति बेचने का कोई अधिकार नहीं था, और दूसरा, कि वाद परिसीमा द्वारा वर्जित था। सिविल अपील सं. 17 A/2002 में प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा पारित 09.04.2003 दिनांकित निर्णय से पता चलता है कि साक्ष्य की सराहना करने के बाद प्रथम अपीली न्यायालय ने विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष को अपास्त किया कि अनुसूचित वाद संपत्ति एक संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति है। वास्तव में, उक्त निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने और इसे अन्यथा अभिनिर्धारित करने के बाद भी प्रथम अपीली न्यायालय ने विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष के साथ सहमति जताते हुए वाद को खारिज करने के निर्णय को बरकरार रखा कि वादी द्वारा प्रस्तुत कर वाद परिसीमा द्वारा वर्जित था। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि यद्यपि, विचारण न्यायालय और प्रथम अपीली न्यायालय इस मुद्दे पर एकमत हैं, वे इस निष्कर्ष पर एकमत नहीं थे कि अनुसूचित वाद संपत्ति संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति है। विचारण न्यायालय के निष्कर्ष के उलट जाने के बावजूद प्रतिवादियों, जो प्रथम अपीली न्यायालय के समक्ष उत्तरवादी थे, ने केवल उनको ही ज्ञात कारणों से, अपील नहीं की तथा इस निष्कर्ष को अंतिम होने दिया कि अनुसूचित वाद संपत्ति एक संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति नहीं है। प्रथम अपीली न्यायालय ने, अन्य बातों के साथ-साथ, मूल उत्तरवादी अशोक कुमार गुप्ता जिसका ब.सा.-1 के रूप में परीक्षण किया गया था तथा दस्तावेजी साक्ष्य का भी पुनः मूल्यांकन किया। इस तरह के मूल्यांकन पर, यह अभिनिर्धारित किया गया कि अनुसूचित वाद संपत्ति स्वर्गीय मंगल सेन गुप्ता के चार पुत्रों अर्थात् वादी के पिता स्वर्गीय श्री रमेश चंद गुप्ता, उत्तरवादी के पिता स्वर्गीय श्री रमेश चंद गुप्ता, स्वर्गीय राम प्रसाद और बेनीराम गुप्ता की संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति नहीं है। यह ऐसे सभी निष्कर्षों के बावजूद है कि प्रथम अपीली न्यायालय के समक्ष उत्तरवादी

अर्थात्, यहाँ अपीलकर्ताओं ने इस प्रतिकूल निष्कर्ष को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती देने के लिए प्रति-अपील या प्रति-आपति दायर नहीं की कि अनुसूचित वाद संपत्ति संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति नहीं है। यह कहना पर्याप्त है कि इन परिस्थितियों में अपीलकर्ताओं को यह प्रचार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि अनुसूचित संपत्ति एक संयुक्त हिंदू पारिवारिक संपत्ति है।

15. इसके अतिरिक्त, आक्षेपित निर्णय के परिशीलन से पता चलता है कि उच्च न्यायालय ने कुछ महत्वपूर्ण विकृतियों को पहचाना है जिन्होंने अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णयों को दूषित किया। 'स्ट्राउड्स जुडिशल डिक्शनरी ऑफ वर्ड्स एंड फ्रेजेस' के चतुर्थ संस्करण में, 'विकृत' अभिव्यक्ति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:-

“विकृत- एक विकृत निर्णय को संभवतः ऐसे निर्णय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो न केवल साक्ष्य के महत्व के विरुद्ध है अपितु पूरी तरह से साक्ष्य के विरुद्ध है।

अरुलवेलु व एक अन्य बनाम राज्य प्रतिनिधि, द्वारा लोक अभियोजक, व एक अन्य³ के निर्णय में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि 'विकृत निष्कर्ष' का अर्थ एक ऐसा निष्कर्ष है जो न केवल साक्ष्य के महत्व के विरुद्ध हो, परन्तु पूरी तरह से साक्ष्य के विरुद्ध हो।

महाप्रबंधक (पी), पंजाब & सिंध बैंक व अन्य⁴ बनाम दया सिंह में निर्णय में, इस न्यायालय ने विकृत निष्कर्ष को एक ऐसे निष्कर्ष के रूप में अभिनिर्धारित किया है जो साक्ष्य के न होने पर आधारित होता है या किसी ऐसे साक्ष्य पर आधारित होता है जिस तक कोई भी तर्कशील व्यक्ति नहीं पहुंचेगा। इसके अतिरिक्त, यह

3 (2009) 10 SCC 206

4 (2010) 11 SCC 233

माना गया कि जब तक यह नहीं पाया जाता है कि कुछ सुसंगत साक्ष्य पर विचार नहीं अभिनिर्धारित किया जाता है गया था या कुछ अस्वीकार्य सामग्री को प्रतिफल रखा गया था, तब तक निष्कर्ष को विकृत नहीं कहा जा सकता था।"

16. विकृत निष्कर्ष के बारे में उपरोक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए हम इस बात पर विचार के लिए आगे बढ़ेंगे कि क्या आक्षेपित निर्णय को निर्विवाद या निर्विवाद तथ्यों और अभिलेख पर साक्ष्य से प्रकट ऐसी स्थितियों और परिस्थितियों पर लागू होने वाले पूर्ववर्ती मूल्य के निर्णयों को ध्यान में रखते हुए बनाए रखा जाना है। इस तरह के प्रतिफल करने के लिए आगे बढ़ने से पहले दीवानी न्यायालय के समक्ष दीवानी कार्यवाही में अभिवचनों के संबंध में विधि की तय की गई स्थिति का उल्लेख करना अनुचित नहीं है।

17. विधि का सामान्य नियम यह है कि साक्ष्य देने की अनुमति केवल ठीक से उठाए गए अभिवाक् पर दी जा सकती है अभिवाक् के विरोधाभास में नहीं (श्रीमती ओम् प्रभा जैन बनाम अबनाश चंद व अन्य⁵ में निर्णय देखें।)

18. राम सरूप गुप्ता (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम बिशुन नारायण इंटर कॉलेज व अन्य⁶ के प्रकरण के निर्णय में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि

:-

	"....यह सुस्थापित किया कि अभिवचन के अभाव में, पक्षों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य, यदि कोई हो, पर विचार नहीं किया जा सकता है। यह भी समान रूप से तय किया गया है कि किसी भी पक्ष को अपनी दलील से आगे जाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए और	
--	---	--

5 (AIR 1968 SC 1083)

6 (1987) 2 SCC 555

	पक्ष द्वारा उसके द्वारा स्थापित प्रकरण के समर्थन में सभी आवश्यक और महत्वपूर्ण तथ्यों का अभिवाक् किया जाना चाहिए।"	
--	---	--

19. काशी नाथ (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम जगन्नाथ⁷ में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जहां साक्ष्य अभिवचनों के अनुरूप नहीं है और उससे भिन्न है, वहां उक्त साक्ष्य पर ध्यान नहीं दिया जा सकता है या उस पर भरोसा नहीं किया जाता है जा सकता है। **दामोदर नारायण सावले (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम तेजराव बाजीराव मास्के⁸** में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि :-

“.....विधि की निकटवर्ती स्थिति यह है कि किसी को केवल अपनी दलीलों के अनुरूप साक्ष्य देने की अनुमति दी जा सकती है। हम दलीलों के विधि के मूल नियम से भी बेखबर नहीं रहेंगे, जो प्रतिभूति और प्रोबेट के सिद्धांत पर आधारित है, कि एक पक्ष को सफल होने की अनुमति नहीं है जहां उसने उस प्रकरण को स्थापित नहीं किया है जिसे वह प्रमाणित करना चाहता है।”

20. अब, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, विचारार्थ, हम सबसे पहले प्रतिवादियों के संयुक्त रूप से प्रस्तुत लिखित कथन में उनके अभिवचनों का उल्लेख करेंगे। कण्डिका 1-क में इसका उल्लेख इस प्रकार किया गया था:-

“1-क. सही और सही स्थिति यह है कि वादी के पिता स्वर्गीय कैलाश चंद; उत्तरवादी के पिता स्वर्गीय रमेश चंद्र; स्वर्गीय राम प्रसाद गुप्ता; और बेनी राम गुप्ता, मंगल सेन गुप्ता के सभी बेटे, हिंदू अविभाजित परिवार के सदस्य थे और वे सभी फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश) में गणेश कांच की चूड़ियों के नाम और शैली में कांच की

⁷ (2003) 8 SCC 740

⁸ 2023 SCC OnLine SC 566

चूड़ियों के निर्माण का अपना व्यवसाय कर रहे थे। वर्ष 1952 में, प्रतिवादियों के पिता और वादी के पिता ने रायपुर शहर में लक्ष्मी बेंगले स्टोर के नाम से एक दुकान खोली। इसके बाद प्रतिवादियों के पिता स्वर्गीय रमेश चंद्र और वादी के पिता ने अपने भतीजे स्वर्गीय सीताराम के नाम पर 15.03.1963 को कुल कीमत रु. 8, 950/- पर वाद भूमि खरीदी क्योंकि स्वर्गीय सीताराम संयुक्त परिवार के सदस्य थे।

“... वर्ष 1968 में, स्वर्गीय राम प्रसाद, जो उत्तरवादी के पिता के भाई थे, ने उत्तरवादी के पिता से अनुरोध किया कि वे वाद की भूमि व अन्य भूमि जो उनके (राम प्रसाद के) बेटे सीताराम के नाम पर हैं, किसी अन्य सदस्य के पक्ष में अंतरित करें। क्योंकि सीताराम की हालत ठीक नहीं है और वह किसी के प्रभाव में आने वाली भूमि को बर्बाद कर सकता है और नष्ट कर सकता है। इसके बाद प्रतिवादियों के पिता ने वाद भूमि व अन्य भूमि जो सीता राम के नाम पर थी, वादी के पक्ष में एक अनुमानित मूल्य पर अंतरित कर दी, हालांकि उन भूमि को रु. 16, 000/- और अभिलेखों में भी उपयुक्त संशोधन किए गए। परन्तु वाद भूमि का रखरखाव और कब्जा सदैव प्रतिवादियों और उनके पिता द्वारा किया जाता था। वर्ष 1973 में, प्रतिवादियों के पिता के भाइयों ने धमतरी में चूड़ी की दुकान खोली और वादी और उसका भाई सुरिंदर इस दुकान में बैठते थे। बाद में, उत्तरवादी के पिता और वादी के परिवार मध्य एक मौखिक बंटवारा हुआ, जिसके अनुसार धमतरी में दुकान और खसरा सं. 924 मोवा गाँव में स्थित 5.00 एकड़ की भूमि वादी और उसके परिवार को दी गई। जबकि वर्तमान वाद भूमि तथा रायपुर की दुकान प्रतिवादियों के

हिस्से में आई।"

21. कण्डिका 1-ख में, इसका उल्लेख इस प्रकार किया गया था:

"1-ख- वस्तुतः वाद भूमि सदैव और आज भी प्रतिवादियों और उनके पिता के कब्जे में थी और उपरोक्त बंटवारा के बाद, उत्तरवादी और उनके पिता और उपरोक्त बंटवारा के बाद, उत्तरवादी और उनके पिता वाद भूमि के पूर्ण और अनन्य स्वामी बन गए और वादी को वाद भूमि में बिल्कुल कोई कब्जा या हित नहीं है।"

22. यह सच है कि लिखित कथन की कण्डिका 9 और 10 में विशेष आपत्तियां निम्नानुसार की गई थीं:-

"9. यदि यह भी माना जाता है कि उत्तरवादी ऊपर पैराग्राफ 1 में वर्णित वाद भूमि के स्वामी नहीं हैं, तो भी उत्तरवादी पिछले 12 वर्ष से अधिक समय से अपने निरंतर और निर्बाध कब्जे के कारण वाद भूमि के स्वामी बन गए हैं और जो वादी की पूरी जानकारी में था। अंतः वादी का वाद केवल इसी आधार पर खारिज किया जा सकता है।"

"10. वह वाद निर्धारित परिसीमा से परे है अतः वाद व्यय के साथ खारिज किए जाने योग्य है।"

23. अब, लिखित कथन में उपरोक्त विशिष्ट कथनों और ऊपर निर्दिष्ट अभिवचनों के संबंध में विधि की स्थिति को ध्यान में रखते हुए, हम मूल उत्तरवादी संख्या 1 के मौखिक साक्ष्य का उल्लेख करेंगे, जिसका ब.सा.-1 के रूप में परीक्षण किया गया था। यह भी बयान देगा कि इसे वर्ष 1963 में सीता राम गुप्ता के नाम पर खरीदा गया था। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि जिरह करते समय, वह गवाही देगा:-

“विवादित जमीनें मेरे पिता ने सीता राम के नाम पर खरीदी थीं।
परन्तु न तो मूल और न ही उस विक्रय विलेख की प्रति प्रस्तुत कर
गई है। हमने बंटवारा के बाद वर्ष 1976 में विवादित भूमि के अपने
नामों पर अंतरण हेतु कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया था।”

24. हमने प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत अभिवचनों और साक्ष्य का परिशीलन किया है, प्रथम अपीली न्यायालय के निष्कर्षों को फिर से देखने के उद्देश्य से नहीं कि अनुसूचित वाद संपत्ति एक संयुक्त पारिवारिक संपत्ति नहीं है। हम इसके कारणों का खुलासा थोड़ी देर बाद करेंगे।

25. अपीलार्थियों के लिए इस तर्क की अनुपलब्धता को देखते हुए कि अनुसूचित वाद संपत्ति एक संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति है। अगला प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष कि वादी अनुसूचित वाद संपत्ति का स्वामी है, तथ्यों को आत्मसात करने और साक्ष्य की सराहना पर सही निष्कर्ष है। हमें इसका सकारात्मक उत्तर देने में कोई संकोच नहीं है। दिनांकित विक्रय- विलेख 04.06.1968 (प्र.P1/C) एक पंजीकृत विक्रय- विलेख है जिसके तहत वादी ने स्वर्गीय श्री सीता राम अग्रवाल से वाद भूमि खरीदी थी।

26. यह एक तथ्य है कि विचारण न्यायालय ने 04.06.1968 दिनांकित विक्रय विलेख प्र.P1/C को दो आधारों पर अमान्य अभिनिर्धारित किया जाता है। वास्तव में, विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि प्र.P1/C में श्री सीताराम को 22 वर्षीय दर्शाया गया था और इसलिए, 15.03.1963 को जब सीताराम के नाम पर वाद भूमि खरीदी गई थी तब श्री सीताराम की आयु 17 वर्ष रही होगी। इसके अतिरिक्त, यह अभिनिर्धारित किया गया कि :-

“जब तक कि अन्यथा प्रमाणित नहीं किया जाता, आयु का यह
साक्ष्य स्वयं धनार्जन करने में असक्षमता को दर्शाता है तथा ठोस
अनुमान निर्मित करता है कि वाद भूमि संयुक्त परिवार के आय से

खरीदी गई थी।”

27. विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय की कण्डिका 16 और 17 में आगे इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :-

“16. अब उस बिंदु का विश्लेषण कि क्या वादी ने वाद भूमि को प्रदर्श P-1 विक्रय विलेख के माध्यम से खरीदा था या क्या वाद भूमि पर कोई कब्जा दस्तावेज प्रदर्श P-1C के आधार पर वादी को प्राप्त होता है। पिछली कण्डिका के अनुसार प्रदर्श P-1C और प्रदर्श P-1 की अवैधता को प्रमाणित करने का भार प्रतिवादियों पर है जिसमें वे विफल रहे हैं और पिछले निष्कर्ष में यह माना गया है कि सीताराम के नाम पर खरीदे जाने के बाद वाद भूमि संयुक्त परिवार की संपत्ति थी। ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे पता चलता है कि सीताराम परिवार के मुखिया थे, अतः यह अभिनिर्धारित किया जाता है जाता है कि सीताराम को बिना किसी कब्जा या कब्जा के निष्पादित विक्रय- विलेख द्वारा वाद भूमि को बेचने का कोई कब्जा नहीं था।

17. यह निष्कर्ष निकालने का एक अन्य आधार कि प्रदर्श P-1C शून्य है, यह है कि जब यह प्रमाणित हो जाता है कि वादी विक्रय के दिनांक अर्थात् 04/06/1968 को संयुक्त परिवार के सदस्यों में से एक था और उस समय अप्राप्तवय था, तो तब संयुक्त परिवार के किसी सदस्य को वाद भूमि उसी संयुक्त परिवार के एक अन्य सदस्य को बेचने की क्या आवश्यकता थी। विक्रय के दिनांक को खरीदार होने के नाते वादी अप्राप्तवय था और उसके पास अपने दम पर धन कमाने की कोई क्षमता नहीं थी। वादी के पिता का व्यवसाय संयुक्त व्यवसाय था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस कार्रवाई के पीछे संयुक्त परिवार का आशय वाद भूमि और सीताराम की अन्य संपत्तियों

को वादी के नाम पर रखना था। परन्तु यह उल्लेख करना उचित है कि इस तरह के आशय के बाद भी प्रदर्श P-1C केवल कागजों पर अंतरण नहीं है अतः प्रदर्श P-1 का कोई विधिक महत्व नहीं है।"

28. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि यद्यपि प्रथम अपीली न्यायालय ने विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष को उलट दिया कि भूमि एक संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति है, लेकिन उसने विस्तार से विचार नहीं किया और विचारण न्यायालय की घोषणा की शुद्धता या अन्यथा के रूप में किसी भी सकारात्मक निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा। किसी भी तरह से, प्रथम अपीली न्यायालय ने इसे दरकिनार नहीं किया। साथ ही, प्रथम अपीली न्यायालय के निर्णय की कण्डिका 17 से निम्नलिखित पठन से यह निष्कर्ष निकालना संभव हो सकता है कि उसने विचारण न्यायालय के निष्कर्ष के विषय में अभिनिर्धारित किया है कि सीताराम द्वारा वादी के पक्ष में वाद भूमि का विक्रय विधि के अनुरूप न होने के कारण वादी को कोई कब्जा प्रदान नहीं करता है :-

".....परन्तु विचारण न्यायालय ने वाद संपत्ति को संयुक्त हिंदू परिवार की संपत्ति के रूप में अभिनिर्धारित किया था और आगे अभिनिर्धारित किया है कि सीताराम द्वारा वादी के पक्ष में वाद भूमि का विक्रय वादी को कोई कब्जा प्रदान नहीं करता है जो निष्कर्ष विधि के अनुसार नहीं है।"

29. प्रासंगिक स्थिति में, विशेष रूप से वाद भूमि के क्रय के समय अप्राप्तवय होने के आधार पर विचारण न्यायालय की टिप्पणी और निष्कर्ष के संदर्भ में, चाहे वह सीताराम का हो या वादी का हो, हम समझते हैं कि चीजों की योग्यता में इस प्रकार अवलोकन करना और मानना ही उचित है:-

संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 6 (ज) अन्य बातों के साथ-साथ यह भी उपबंधित करती है कि "अंतरिती होने के लिए विधिक रूप से अयोग्य व्यक्ति को कोई

अंतरण नहीं किया जा सकता है।” संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 7 अंतरण करने हेतु सक्षम व्यक्तियों से संबंधित है। यह उपबंधित करती है कि संविदा के लिए सक्षम व्यक्ति उस सीमा तक और उस तरीके से संपत्ति का अंतरण करने में सक्षम है जो उस समय लागू किसी भी विधि द्वारा अनुज्ञेय और निर्धारित किया गया है। भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 11 यह उपबंधित करती है कि कौन संविदा करने के लिए सक्षम है और यह उपबंधित करती है कि ऐसा प्रत्येक व्यक्ति संविदा करने के लिए सक्षम है जो उस विधि के अनुसार वयस्क आयु का है जिसके अधीन वह है (निश्चित रूप से संदर्भ भारतीय वयस्कता अधिनियम, 1875 का है) और जो स्वस्थ दिमाग का है और किसी भी विधि द्वारा संविदा करने के लिए अयोग्य नहीं है जिसके अधीन वह है।

30. यद्यपि विक्रय का करार विक्रय का संविदा है, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 54 के तहत इसकी परिभाषा के अनुसार, किसी विक्रय को संविदा नहीं कहा जा सकता है। विक्रय, उसमें उसकी परिभाषा के अनुसार, भुगतान या वादा किए गए या आंशिक भुगतान और आंशिक वादा किए गए मूल्य के बदले में स्वामित्व का अंतरण है। उपरोक्त सभी सुसंगत उपबंधों का संयुक्त वाचन निस्संदेह यह दर्शाता है कि वे किसी अप्राप्तवय के पक्ष में एक अचल संपत्ति के अंतरण के रास्ते में नहीं आते हैं, या दूसरे शब्दों में, वे स्पष्ट रूप से समझाते हैं कि कोई अप्राप्तवय अंतरिती हो सकता है, यद्यपि अचल संपत्ति का अंतरणकर्ता नहीं। ऐसी परिस्थितियों में, केवल यह कहा जा सकता है कि 15.03.1963 को उसके नाम पर वाद भूमि के क्रय के समय श्री सीताराम की कोई विधिक असक्षमता या अयोग्यता नहीं थी तथा 04.06.1968 को प्र.P1/C- विक्रय विलेख के निष्पादन के समय वादी की भी अंतरिती के रूप में। यह किसी का प्रकरण नहीं है कि प्र.P1/C के निष्पादन के समय सीताराम वयस्क नहीं हुआ था।

31. 15.03.1963 व 04.06.1968 दिनांकित विक्रय विलेख पर प्रतिवादियों/अपीलार्थियों के दोलनकारी रुख के कारण, और प्रतिवादियों के इस तर्क को पुनर्जीवित करने के लिए कि वाद भूमि एक संयुक्त हिंदू पारिवारिक संपत्ति है, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से प्राप्त

निर्विवाद स्थिति के साथ स्वीकार्य रूप से उपयुक्त भूमि श्री सीता राम के नाम पर खरीदी गई थी, हम 15.03.1963 दिनांकित उक्त विक्रय विलेख के साथ-साथ 04.06.1968 दिनांकित विक्रय विलेख प्र.P1/C को अमान्य ठहराने या यह मानने का कोई कारण नहीं पाते हैं कि उनका स्वामित्व अंतरण का प्रभाव नहीं था। यद्यपि, प्रतिवादियों ने विशेष रूप से इस आधार पर कोई तर्क नहीं उठाया कि श्री सीता राम एक बेनामी थे, उक्त प्रश्न कि क्या ऐसा कोई तर्क उपलब्ध है और उत्तरवादी द्वारा उक्त विक्रय विलेखों को अमान्य करने के लिए बनाए रखा जा सकता है, उच्च न्यायालय द्वारा इस तर्क पर ध्यान दिया गया है कि यद्यपि यह वर्ष 1963 में उनके नाम पर खरीदा गया था, उन्हें प्र.P1/C- विक्रय-विलेख के अनुसार वादी को वाद भूमि अंतरित करने का कब्जा नहीं था। इस संबंध में, बेनामी संव्यवहार अधिनियम, 1988 की धारा 4 को उच्च न्यायालय द्वारा संदर्भित किया गया था। उसकी उप-धारा 4(1) व 4(2) को संदर्भित कर उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि बेनामी अभिनिर्धारित की गई किसी संपत्ति के संबंध में अधिकार लागू करने हेतु कोई वाद, दावा या कृत्य उस व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होगा जिसके नाम पर संपत्ति रखी गई अभिनिर्धारित है या ऐसी संपत्ति का वास्तविक स्वामी होने का दावा करने वाले व्यक्ति या उसकी ओर से ऐसा दावा करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध भी नहीं होगा। **आर. राजगोपाल रेड्डी (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम पद्मिनी चंद्रशेखरन (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से**⁹ के प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए तथा उपरोक्त उपबंधों में निहित निषेध को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय ने वस्तुतः ऐसा तर्क अभिनिर्धारित किया जाता है कि श्री सीता राम उस संपत्ति के स्वामी नहीं थे, जिसे अलग करने का कब्जा था, (निश्चित रूप से, वयस्क होने पर) और प्र.P1/C के तहत वाद भूमि के क्रय के अनुसार वादी द्वारा अधिग्रहित कब्जा के विरुद्ध चुनौती भी योग्य नहीं थी। यह कहना पर्याप्त है कि उच्च न्यायालय द्वारा सौंपे गए और हमारे द्वारा दिए गए उपरोक्त कारणों को देखते हुए, विक्रय विलेख प्र.P1/C के बल पर श्री

सीता राम से वादी को वाद भूमि के स्वामित्व के अंतरण के संबंध में कोई संदेह नहीं हो सकता है।

32. जिस प्रश्न पर आगे विचार किया जाना है, वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय अपीलार्थियों के इस तर्क को अस्वीकार करने में सही था कि उन्होंने प्रतिकूल कब्जे से वाद भूमि पर कब्जा को पूर्ण किया। ब.सा.-1 के रूप में प्रतिपरीक्षण किए जाने के दौरान, मूल उत्तरवादी सं. 1, ने निम्नानुसार कथन किया :-

“मेरे और मेरे भाई ने तहसीलदार के न्यायालय में पट्टा और भूमि पर हमारे कब्जे के आधार पर विवादित भूमि के हमारे नाम पर अंतरण हेतु एक आवेदन प्रस्तुत किया था। प्र. P4 वह आवेदन है जिसके ‘A-A’ भाग पर मेरे हस्ताक्षर हैं और भाग ‘B-B’ पर मेरे भाई के हस्ताक्षर हैं।”

33. आगे के प्रतिपरीक्षण के दौरान, उसने कथन किया कि :-

“आवेदन प्र. P4 के तहत राजस्व न्यायालय में विवादित भूमि पर हमारा नाम कानूनी रूप से अंतरित नहीं हुआ था।”

34. हम पहले ही पा चुके हैं कि उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में पूरी तरह से सही था कि वादी ने प्र.P1/C विक्रय विलेख के बल पर संपत्ति पर स्वामित्व प्राप्त कर लिया था। इन परिस्थितियों में जैसा कि प्रतिकूल कब्जा द्वारा कब्जा को पूर्ण करने से संबंधित है और साथ ही जिस वाद को परिसीमा द्वारा वर्जित किया जा रहा है, उस पर भी ब.सा.-1 की मौखिक साक्ष्य के संदर्भ में विचार किया जाना चाहिए जैसा कि ऊपर निकाला गया है व अन्य संबद्ध साक्ष्य और प्रतिकूल कब्जा के आधार पर उक्त दावे को नकारने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट और उन पर भरोसा किए गए विभिन्न निर्णयों के संदर्भ में भी विचार किया जाना चाहिए। स्वयं ब.सा.-1 के साक्ष्य से यह पता चलता है कि मूल प्रतिवादियों ने उक्त संपत्ति पर कब्जा प्राप्त करने के लिए आवेदन किया

था और उस संबंध में प्र.P4 प्रस्तुत किया था और साथ ही राजस्व रिकॉर्ड में वाद भूमि के संबंध में वादी के स्थान पर अपने नाम दर्ज करने की मांग की थी। यद्यपि, ऐसा उत्परिवर्तन कभी नहीं हुआ था। वस्तुतः साक्ष्य से पता चलता है कि प्रतिवादियों ने तहसीलदार, रायपुर के समक्ष 27.01.1981 (प्र.P4) पर एक आवेदन दिया था, जिसमें कहा गया था कि उन्होंने 1973-1974 में वादी से अधियादार के रूप में वाद भूमि पट्टे पर ली है और दो वर्ष से अधिक समय तक उसी पर खेती की है और इस तरह वे प्रश्नगत संपत्ति के पूर्ण स्वामी बन गए। उक्त आवेदन की कण्डिका (1) में उन्होंने विशेष रूप से कहा कि उन्होंने वादी राजेंद्र कुमार से उनके स्वामित्व में कृषि भूमि पट्टे पर ली थी। अभिलेखों से यह तथ्य सामने आया है कि उक्त आवेदन को तहसीलदार द्वारा 22.06.1985 दिनांकित आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था और इसके विरुद्ध अपील को उप-मंडल अधिकारी, रायपुर द्वारा 29.10.1986 को खारिज कर दिया गया था। यद्यपि, इस मामले को आगे आयुक्त के समक्ष उठाया गया था, लेकिन उन्होंने 29.03.1988 दिनांकित आदेश के अनुसार उप-मण्डल अधिकारी के आदेश की पुष्टि की। अभिलेख पर उपलब्ध इन साक्ष्यों पर विधिवत ध्यान दिया गया और उच्च न्यायालय द्वारा उन पर विचार किया गया। आवेदन प्रस्तुत करने और उस पर आदेश पारित करने का तथ्य, जैसा कि ऊपर बताया गया है, निर्विवादित है और उस पर विवाद नहीं हो सकता है इसलिए, साक्ष्य के आधार पर, जैसा कि ऊपर बताया गया है, उत्तरवादी/अपीलार्थी उत्तरवादी/वादी के विरुद्ध प्रतिकूल कब्जा का दावा नहीं कर सकते हैं। उपरोक्त निर्विवादित तथ्यों को ध्यान में रखते हुए और साथ ही ऊपर निर्दिष्ट विक्रय विलेखों के शून्य होने के तर्क को अस्वीकार करने पर, प्रतिवादियों का यह दावा करना उचित नहीं होगा कि उन्होंने प्रतिकूल कब्जे से कब्जा को पूर्ण किया था और साथ ही उपरोक्त स्थिति से पता चलेगा कि उनका कब्जा अनुज्ञेय प्रकृति का था। साक्ष्य के उचित मूल्यांकन के आधार परन्तु उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रकार का निष्कर्ष, जैसा कि आक्षेपित निर्णय से स्पष्ट है, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के सही मूल्यांकन के परिणाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

35. यह भी एक तथ्य है कि प्रतिवादियों ने पहले यह तर्क दिया था कि वर्ष 1976 में वादी और प्रतिवादियों के परिवार के मध्य संपत्तियों का मौखिक बंटवारा हुआ था, जिसके तहत उन्हें रायपुर में वाद भूमि और चूड़ी की दुकान मिली थी। प्रथम अपीली न्यायालय ने उक्त प्रकरण पर विचार करने के बाद मौखिक बंटवारे के संबंध में दावे को स्वीकार करने से इनकार किया तथा मौखिक बंटवारा प्रमाणित नहीं होना अभिनिर्धारित किया तथा प्रथम अपीली न्यायालय के निष्कर्ष को भी वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा अंतिम होने की अनुमति दी गई थी।

36. अब, हम अपीलार्थियों द्वारा उठाए गए प्रतिकूल कब्जे के दावे पर वापस लौटेंगे। इस संदर्भ में, प्रतिकूल कब्जे के उनके दावे को अस्वीकार करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा भरोसा किए गए इस न्यायालय के निर्णयों का उल्लेख करना भी सुसंगत है। इंदिरा (पूर्वोक्त) के प्रकरण में, जिसमें इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि वादी द्वारा अपने स्वत्व को एक बार प्रमाणित कर देने के बाद, प्रतिवादी को स्वत्व का दावा स्थापित करने हेतु सुसंगत दस्तावेजों व अन्य साक्ष्यों के माध्यम से विहित अवधि हेतु प्रतिकूल कब्जे को प्रमाणित करना था तथा जब तक ऐसा नहीं किया जाता, वादी का वाद खारिज नहीं किया जा सकता है।

37. हम पहले ही इस तथ्य पर गौर कर चुके हैं कि उच्च न्यायालय ने प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत प्र.P4 आवेदन पर सम्यक् ध्यान दिया था तथा प्रतिपरीक्षण के दौरान ब.सा.-1 के साक्ष्य पर भी सम्यक् ध्यान दिया था, जिन पर अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा उचित महत्व नहीं दिया गया था। हमने यह भी पाया है कि उच्च न्यायालय उचित रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि अपीलार्थियों का अनुसूचित भूमि पर केवल अनुज्ञेय कब्जा था और यह प्रतिकूल कब्जा नहीं था। प्रासंगिक स्थिति में, उच्च न्यायालय द्वारा सरूप सिंह बनाम बंतो¹⁰ में दिए गए निर्णय सहित निम्नलिखित निर्णय बहुत प्रासंगिक हैं। सरूप सिंह के निर्णय की कण्डिका 28,29 और 30 इस प्रकार हैं:-

10 (2005) 8 SCC 330

"28. परिसीमा अधिनियम, 1908 में संलग्न अनुसूची के अनुच्छेद 142 और 144 की शर्तों की तुलना में परिसीमा अधिनियम के वैधानिक उपबंधों में बदलाव आया है, जिसके संदर्भ में वादी के लिए न केवल अपना हक प्रमाणित करना अनिवार्य था, परन्तु वाद की स्थापना की दिनांक से पहले बारह वर्ष के भीतर अपना कब्जा प्रमाणित करना भी अनिवार्य था। हालांकि, परिसीमा अधिनियम 1963 के अनुच्छेद 64 और 65 को देखते हुए विधिक स्थिति में बदलाव किया गया है। प्रस्तुत प्रकरण में, वादी-प्रत्यर्थियों ने अपना स्वत्व (टाइटल/हक) प्रमाणित कर दिया है अतः प्रतिकूल कब्जे द्वारा स्वत्व (टाइटल/हक) के अधिग्रहण को प्रथम उत्तरवादी द्वारा प्रमाणित किया जाना चाहिए था। जैसा कि उपर दर्शित है, प्रथम प्रतिवादी- अपीलार्थी ने प्रतिकूल कब्जे का कोई अभिवाक् नहीं किया है। उस दृष्टि से वाद वर्जित नहीं था।

29. अनुच्छेद 65 के संदर्भ में परिसीमा का प्रारंभिक बिंदु उस दिनांक से शुरू नहीं होता है जब वादी को स्वामित्व का कब्जा प्राप्त होता है, परन्तु उस दिनांक से शुरू होता है जब उत्तरवादी का कब्जा प्रतिकूल हो जाता है। (वसंतिबेन प्रह्लादजी नायक बनाम सोमनाथ मुलजिभाई नायक [(2004) 3 एस. सी. सी. 376] देखें।)

30. कब्जे की मंशा ("एनिमस पोसिडेन्डी") प्रतिकूल कब्जे के अवयवों में से एक है। जब तक भूमि पर काबिज व्यक्ति के पास आवश्यक वैमनस्यता नहीं है, तब तक विहित अवधि प्रारम्भ नहीं होती है। जैसा कि प्रस्तुत प्रकरण में, अपीलकर्ता स्पष्ट रूप से कहता है कि उसका कब्जा वास्तविक स्वामी के रूप में प्रतिकूल नहीं है,

तार्किक परिणाम यह है कि उसके पास अपेक्षित वैमनस्यता नहीं थी।

(मोहम्मद अली बनाम जगदीश कलीता [(2004) 1 एस.सी.सी.

271] देखें।"

38. एम. दुरई बनाम मुथु व अन्य¹¹ में इस न्यायालय के निर्णय ने सरूप सिंह के प्रकरण में ऊपर दिए गए विधि को दोहराया और आगे इस प्रकार अभिनिर्धारित किया:-

"7. साक्ष्य के भार के भार के संबंध में विधि की स्थिति में परिवर्तन जैसा कि परिसीमा अधिनियम, 1963 की तुलना में परिसीमा अधिनियम, 1908 से स्पष्ट है। जबकि पुराने परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 142 और 144 के संदर्भ में, वादी परिसीमा अधिनियम 1963 के तहत वाद की स्थापना की दिनांक से पहले बारह वर्ष के भीतर अपने कब्जे को प्रमाणित करने के लिए बाध्य था, एक बार जब वादी अपना कब्जे प्रमाणित कर देता है, तो यह स्थापित करने का भार उत्तरवादी पर अंतरित हो जाता है कि उसने अपने कब्जे को प्रतिकूल कब्जे से परिपूर्ण कर लिया है।"

39. सरूप सिंह के प्रकरण में निर्धारित विधि को इस न्यायालय ने **प्रसन्ना व अन्य बनाम मुडेगौड़ा (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से¹²** तथा **वसंत बनाम राजलक्ष्मी¹³** के प्रकरणों में अपने निर्णयों में दोहराया।

40. सरूप सिंह के प्रकरण के आलोक में इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि एक बार जब वादी वाद संपत्ति पर अपना कब्जा प्रमाणित कर देता है तो यह उत्तरवादी के लिए है जो उसी प्रतिकूल कब्जे का दावा करने का विरोध करता है कि उसने प्रतिकूल कब्जे के माध्यम से कब्जा को परिपूर्ण किया और उस संबंध में, परिसीमा अधिनियम, 1963 के

11 (2007) 3 SCC 114

12 2023 SCC OnLine SC 511

13 2024 SCC OnLine SC 132

अनुच्छेद 65 के संदर्भ में परिसीमा का प्रारंभिक बिंदु उस दिनांक से शुरू नहीं होगा जब स्वामित्व का अधिकार वादी के पास उत्पन्न होता है बल्कि यह केवल उस दिनांक से शुरू होगा जब उत्तरवादी का कब्जा प्रतिकूल हो जाता है।

41. बृज नारायण शुक्ला (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम सुदेश कुमार बनाम सुरेश कुमार (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से व अन्य¹⁴ के निर्णयों में इस न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि क्या मूल स्वामी के किरायेदार भूमि स्वामी के अंतरणकर्ता के विरुद्ध प्रतिकूल कब्जे का दावा कर सकते हैं, यह अभिनिर्धारित किया कि किरायेदार या पट्टेदार अपने मकान स्वामी/पट्टादाता के विरुद्ध प्रतिकूल कब्जे का दावा नहीं कर सकते हैं, क्योंकि उनके कब्जे की प्रकृति अनुज्ञेय प्रकृति की है।

42. प्रासंगिक स्थिति में, विशेष रूप से प्रतिकूल कब्जे के दावे को स्थापित करने और समर्थन करने में प्रतिवादियों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की प्रकृति को देखते हुए, रविंदर कौर ग्रेवाल व अन्य बनाम मंजीत कौर व अन्य¹⁵ के प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णयों तथा **एम. सिद्दीक (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से (राम जन्मभूमि मंदिर प्रकरण) बनाम महंत सुरेश दास व अन्य¹⁶** के प्रकरणों में एक संविधान पीठ के निर्णय को संदर्भित करना आवश्यक होगा। **रविंदर कौर ग्रेवाल** के प्रकरण के निर्णय की कण्डिका 60, जहाँ तक सुसंगत है, इस प्रकार है:-

“60. प्रतिकूल कब्जा के लिए सभी तीन प्रमुख आवश्यकताओं का एक ही समय में अस्तित्व में रहना आवश्यक होता है। वे तीन प्रमुख आवश्यकताएँ हैं- निरंतरता में पर्याप्त होना (नेक वी), प्रचार में पर्याप्त होना (नेक क्लेम) एक प्रतियोगी के लिए प्रतिकूल, स्वत्व और उसके ज्ञान के इनकार में (नेक प्रिकारियो)। दृश्यमान, कुख्यात और शांतिपूर्ण ताकि यदि स्वामी कुख्यात तथ्यों को जानने का ध्यान नहीं

14 (2024) 2 SCC 590

15 (2019) 8 SCC 729

16 (2020) 1 SCC 1

रखता है, तो ज्ञान का श्रेय उसे इस आधार पर दिया जाता है कि उचित प्रयत्न से वह इसे जानता। प्रतिकूल कब्जे को उस स्वत्व पर निर्धारित नहीं किया जा सकता है जिसका अनुरोध नहीं किया गया है। स्वत्व के शत्रुतापूर्ण रंग के तहत कब्जे की मंशा की आवश्यकता होती है

43. प्रस्तुत प्रकरण में, प्रतिवादियों/अपीलार्थियों के साक्ष्य से पता चलता है कि शत्रुतापूर्ण रंग के तहत 'कब्जे की मंशा' स्थापित करने के बजाय उन्होंने केवल अनुज्ञात्मक कब्जा का संकेत देते हुए साक्ष्य प्रस्तुत किया है और साथ ही यह उस समय को स्थापित करने में विफल रहे हैं जब से इसे वादी के कब्जा के प्रतिकूल परिवर्तित हुआ था जो विहित अवधि के लिए खुला और निरंतर है।

44. **एम. सिद्धिक** (पूर्वोक्त) के प्रकरण में कण्डिका 1142 व 1143 इस प्रकरण से निम्नानुसार सुसंगत हैं :-

“1142. प्रतिकूल कब्जा की अभिवाक् इस स्वीकृति पर आधारित है कि संपत्ति का स्वामित्व व एक अन्य में निहित है, जिसके विरुद्ध दावेदार व एक अन्य के स्वामित्व के प्रतिकूल कब्जा का दावा करता है। कब्जा इस अर्थ में प्रतिकूल है कि यह उस दूसरे व्यक्ति में स्वीकार किए गए स्वत्व (टाइटल/ हक) के विपरीत है जिसके विरुद्ध इसका दावा किया जाता है। स्पष्ट रूप से, इसलिए वाद 4 में वादी को इस तथ्य से अवगत होना चाहिए कि हिंदुओं या मंदिर के विरुद्ध प्रतिकूल कब्जे का कोई भी दावा उत्तरार्द्ध में एक स्वत्व (टाइटल/ हक) की स्वीकृति के बराबर होगा। डॉ. धवन का निवेदन है कि यह अभिवाक् एक सहायक या वैकल्पिक अभिवाक् है जिस परवादियों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे उस स्थिति में खड़े हों जब स्वत्व पर उनकी मुख्य अभिवाक् साक्ष्य पर स्थापित की जाती है। तब यह आकलन

करना आवश्यक है कि प्रतिकूल कब्जे का दावा स्थापित किया गया है या नहीं।

1143. एक व्यक्ति जो प्रतिकूल कब्जे की अभिवाक् स्थापित करता है, उसे दोनों कब्जे स्थापित करने चाहिए जो शांतिपूर्ण, खुला और निरंतर कब्जा है जो निरंतरता में पर्याप्त होना (नेक वी), प्रचार में पर्याप्त होना (नेक क्लेम) एक प्रतियोगी के लिए प्रतिकूल, स्वत्व और उसके ज्ञान के इनकार में (नेक प्रिकारियो) की आवश्यकता को पूरा करता है। प्रतिकूल कब्जे के अभिवाक् को प्रमाणित करने के लिए, कब्जे का चरित्र निरंतरता में और सार्वजनिक रूप से पर्याप्त होना चाहिए क्योंकि कब्जा वास्तविक स्वामी की जानकारी के लिए होना चाहिए ताकि यह प्रतिकूल हो। इन आवश्यकताओं को पहले पर्याप्त दलीलों द्वारा और दूसरा पर्याप्त साक्ष्य का नेतृत्व करके विधिवत स्थापित किया जाना चाहिए। साक्ष्य, यह अच्छी तरह से तय किया गया है, केवल उन मामलों के संदर्भ में प्रस्तुत किया जा सकता है जो एक व्यवहार वाद में अभिवचन किए जाते हैं और पर्याप्त अभिवचन के अभाव में, साक्ष्य स्वयं एक अभिवचन प्रकरण की कमी की आपूर्ति नहीं कर सकता है।"

45. यहाँ अपीलार्थियों (प्रतिवादियों) के साक्ष्य पर विचार करने पर, हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि प्रतिकूल कब्जा निर्मित करने के लिए सह-अस्तित्व की आवश्यकताएँ उनके द्वारा स्थापित नहीं की गई हैं। इसलिए भी, केवल यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि वाद भूमि पर वादी के स्वामित्व के कब्जा की शुरुआत की दिनांक से परिसीमा की अवधि की गणना हुई यह देखने के बजाय कि क्या वे में विहित अवधि के संबंध में प्रतिकूल कब्जे के प्रारंभ होने की तिथि और विहित अवधि के संबंध

में संतुष्टि का अभिवचन करने और उसे स्थापित करने में सफल रहे हैं, मैं उच्च न्यायालय द्वारा उचित रूप से हस्तक्षेप किया गया था।

46. इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि समवर्ती होना पुष्टि का आधार नहीं हो सकता है और जैसा कि **डी. आर. रत्ना मूर्ति बनाम रामप्पा** के प्रकरण में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है कि आक्षेपित निर्णय में विकृति पाई जाती है तो समवर्ती निष्कर्षों को अपास्त किया जा सकता है।

47. उपरोक्त चर्चा का परिणाम यह है कि आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय का सुविचारित निर्णय अपील की अधिकारिता के प्रयोग में कोई हस्तक्षेप आमंत्रित नहीं करता है तथा अपील खारिज किए जाने योग्य हैं। अतः हक में अभिलिखित अपीलों को खारिज किया जाता है। वाद व्यय के विषय में कोई आदेश नहीं।

सिविल अपील सं. 3159-3160/ 2019

में

अवमानना याचिका सं. 517-518/ 2020

48. अवमानना याचिका 2019 की सिविल अपील संख्या 3159-3160 में 27.03.2015 को पारित एक आदेश से उत्पन्न होती है, जब यह 2015 की केवल विशेष अनुमति याचिका सं. 6995-6996 के रूप में ही थी। इस न्यायालय ने नोटिस जारी करते हुए इस प्रकार आदेश दिया:-

“कब्जा के संबंध में स्थिति (स्टेटस क्वो) , जैसा कि आज मौजूद है, पक्षों द्वारा अगले आदेश तक बनाई रखी जाएगी।”

27.10.2020 पर इस न्यायालय ने एक अन्य आदेश पारित किया, जिसमें, अन्य बातों के साथ, यह आदेश दिया गया था:

“यह स्पष्ट किया जाता है कि अगले अवसर पर अवमानना याचिका के साथ-साथ सी. ए. संख्या 3159-3160/2019 का अंतिम निपटारा

किया जाएगा।"

49. कथित अवमानना यह है कि दीवानी अपील लंबित है और कब्जे के संबंध में स्थिति (स्टेटस क्वो) के आदेश के पारित होने के बाद, अवमानना याचिका में उत्तरवादी अर्थात् अपीलकर्ताओं ने संपत्ति में तीसरे पक्ष के कब्जा बनाए। जाहिर है, दीवानी अपीलों को खारिज करने के साथ उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और डिक्री की पुष्टि हो गई और यह घोषणा कि अपील में प्रथम उत्तरवादी- वादी विशेष रूप से उसमें उल्लिखित वाद संपत्ति के कब्जे की वसूली का हकदार है, अंतिम हो गया है। अतः निर्विवाद रूप से, आदेश व डिक्री के संदर्भ में यहाँ अपीलार्थी वादी को अनुसूचित वाद भूमि का खाली कब्जा देने के लिए बाध्य हैं।

50. चूँकि यह निष्पादन योग्य है, हम अवमानना याचिका में किए गए तर्कों पर विचार करना प्रस्तावित नहीं करते हैं तथा सिविल अपील सं. 3159-60/2019 के निर्णय को दृष्टिगत रखते हुए अवमानना याचिका को समाप्त करने तथा कथित अवमानकों को नोटिस जारी करने तथा सिविल अपील के प्रथम उत्तरवादी अर्थात् वादी को विधि के अनुसार डिक्री के निष्पादन हेतु छूट देने के इच्छुक हैं।

51. तदनुसार, अवमानना याचिका ऊपरोक्त रूप से समाप्त होती है।

....., न्यायाधीश

(सी. टी. रविकुमार)

....., न्यायाधीश

(संजय कुमार)

नई दिल्ली;

अक्टूबर 14, 2024

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण: हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेजी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।